राँड- साँड सीढ़ी- संन्यासी

काशी के संबंध में दो पंक्तियाँ जन- जन में प्रचलित है --

रांड़, सांड़, सीढ़ी संन्यासी।
इनसे बचै तो सेवे काशी।।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

वाराणसी वैभव या काशी वैभव - सुनील कुमार झा

काशी के बारे में जो लोग अच्छी धारणा बनाकर यहाँ आते रहें, जब उन्हें यहाँ इन लोगों की अधिकता दिखाई दी, तो यह कहावत चल निकली, लेकिन अब इन पंक्तियों को व्यंग्य के रूप में कहा जाता है। सवाल यह है कि आखिर इनकी अधिकता यहाँ क्यों है ?

ज्ञातव्य है कि वाराणसी में जितनी विधवाएँ हैं, उनमें ९० प्रतिशत बंगाल की हैं। शेष १० प्रतिशत संख्या संपूर्ण भारत की हैं। बंगाल में महिलाओं की दशा अत्यंत शोचनीय थी। उन्हें धार्मिक मामलों में स्वतंत्रता नहीं थी। ब्राह्मणियों को गायत्री मंत्र आदि सुनने का अधिकार नहीं था। पैसे के लोभ के कारण अभिभावक बहुधा वृद्ध या विकलांग व्यक्ति से छोटी बच्चियों की शादी कर देते थे। पुरुषों को एक- से अधिक पत्नियाँ रखने का अधिकार था, किंतु विधवा बालिका को दूसरी शादी करने का अधिकार नहीं था। पति की मृत्यु के बाद नारी असहाय हो जाती थी। साज- श्रृंगार करना उसके लिए गुनाह था। उसे पुरुषों की तरह छोटे बाल रखने पड़ते थे। एक सफेद धोती के अलावा कुछ भी नहीं मिलता था। माँस- मछली खाने को कौन कहे, पान भी खाना पाप माना जाता था।

विधवाओं की यह स्थिति आजादी के पूर्व तक थी। शुभ कार्यों में आज भी वे इसलिए शामिल नहीं होतीं कि कोई प्राचीन पंथी पुरुष आलोचना न करने लगे। उन दिनों संपत्ति पर उनका अधिकार नहीं होता था। कन्या का पिता बनना एक प्रकार से अभिशाप था। कुलीनता के लोभ में लोग अपनी कन्या बूढ़ों के साथ ब्याह देते थे। इस समस्या के समाधान के लिए सती प्रथा का आरंभ हुआ।

बाद में राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा को बंद करवाया और ब्रह्म समाज तथा पं. ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयत्नों से विधवा विवाह प्रारंभ हुआ। फलतः कट्टरपंथी लोगों ने इस आंदोलन को पसंद नहीं किया। महिलाओं पर और भी कड़ाई हुई। ऐसी महिलाएँ पारिवारिक अशांति से मुक्ति पाने के लिए नवद्वीप, वृंदावन और काशी आने लगीं तथा नवद्वीप में चैतन्य महाप्रभु, वृंदावन में राधाकृष्ण और काशी में विश्वनाथ मंदिर में भजन- पूजन में लग गयीं। जिन विधवाओं को परिवार से सहायता प्राप्त होती रही, वे खुशहाल थीं और असहायों के लिए विधवा आश्रमों की स्थापना की गयी। उत्तर भारत के इन तीन नगरों में विधवाओं की संख्या क्रमशः बढ़ती गयी। यहाँ तक कि कुछ अपरिचित विधवाओं को शरत् बाबू, विद्यासागर जी आदि लोग सहायता देते रहे। जलवायु अच्छी होने के कारण उनका स्वास्थ्य सुधर गया। शाम को गंगा किनारे वे कथा सुनने लगीं।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

वाराणसी वैभव या काशी वैभव - सुनील कुमार झा

इनमें कुछ पति द्वारा परित्यक्ता भी थीं, जो सहायता पाने के लालच से विधवा का स्वाँग बनाती थी और मंदिरों के दरवाजे पर भिखमंगों के साथ भीख माँगती थीं। कुछ शारीरिक श्रम के जरिये पेट चलाती रहीं। यहाँ तक तो गनीमत थी, किंतु जब कम उम्र की विधवाओं का आगमन हुआ, तब वे चढ़ती उम्र के कारण अपने को स्थिर नहीं रख सकीं। इस समस्या को लेकर हिंदी और बँगला में कहानियाँ लिखी गयीं, जिसके कारण काशी की विधवाओं की बदनामी हुई।

शिव के वाहन सांड़ काशी में पूजनीय माने जाते हैं। जिस प्रकार धार्मिक परंपरा में यह मान्यता है कि गऊ दान से वैतरणी पार करने में आसानी होती है या यह एक पुण्य कार्य है, ठीक उसी प्रकार वृषोत्सर्ग करना, धार्मिक कृत्य माना गया है। सांड़ की कमर में गरम लोहे का चक्र या त्रिशूल दाग दिया जाता है। इस मुहर के कारण वह अवध्य हो जाता है। लोग उसे मारते नहीं, कांजी हाउस में उनका दाखिला नहीं होता। यहाँ तक कि लोग उसकी पूजा करते हैं, फल-मिठाई खिलाते हैं।

सांडों की महत्ता गुजरातियों के कारण बढ़ी है। गुजरात और काठियावाड़ के हिंदुओं में अपने पितृ- पुरुषों के नाम वृषोत्सर्ग करने की प्रथा है। इन सांड़ों के भोजन के लिए काशी स्थित वीरेश्वर और भाऊजानी के पास देश के भिन्न- भिन्न नगरों से दान की रकम आती थी। नगर के ऐसे सांड़ों के लिए भूसे का प्रबंध, इसी रकम से किया जाता था।

सन् १८५२ में ब्रिटिश सरकार ने नगर के छुट्टा पशुओं को पकड़कर कम- सरियट में बंद करने का हुक्म जारी किया। इस आदेश के कारण सांड़ों को पकड़ कर बंद किया जाने लगा। काशी के निवासी सांड़ों को शिव का वाहन समझते आये हैं। दौड़ कर दगे हुए सांड़ों को पकड़ना धार्मिक हस्तक्षेप माना गया। फलतः जनता की ओर से विरोध किया गया। लेकिन इस विरोध का कोई असर नहीं हुआ। तत्कालीन कलेक्टर ग्राविन्स ने समझौता कराने के लिए जनता के प्रतिनिधियों को नाटी इमली के मैदान में बुलाया, परंतु समझौता नहीं हो सका। कुछ लोग क्रुद्ध हो गये और पास ही कुम्हार की दुकान से गौरेया (मिट्टी का हुक्का) उठाकर कलेक्टर और कोतवाल पर फेंकने लगे। काफी लोग घायल हुए। इस घटना के बाद से दगे सांड़ों को पकड़कर बंद करना रोक दिया गया।

इसके पूर्व अमेरिका के राष्ट्रपति ग्रांट सपत्नीक काशी आये थे। किसी गली में उनकी पत्नी को एक सांड़ ने सींग पर उठा लिया था। काशी में दगे सांड़ों की अधिकता देखकर, नगरपालिका के किसी सदस्य ने सुझाव दिया कि कूड़ा- गाड़ी में भैसों की तरह, इनका भी उपयोग किया जाए। कहा जाता है कि कुछ लोगों ने सांड़ों को उनके पीछे ललकार दिया था। इसमें संदेह नहीं कि इन सांडों के कारण जनता परेशान रहती है। पता नहीं, कब किसे मार दें या कुचल दे। इनके युद्ध के कारण सड़क जाम हो जाना, दुकान लुट जाना, यहाँ तक कि भयंकर भगदड़ की घटनाएँ हो चुकी हैं। संभवतः इनके उपद्रवों से त्रस्त होकर नागरिकों तथा यात्रियों ने कहावत में सांड़ों को स्थान दिया।

प्रारंभ से वाराणसी में लोग गंगा किनारे बसना पसंद करते रहे हैं। राजघाट से दशाश्वमेध घाट तक फैला क्षेत्र काशी का शहर ही इसके पूर्व राजघाट और वरणावती के आस- पास काशी नगरी थी। वर्तमान क्षेत्र की भीतरी महाल की संज्ञा दी गयी है। दशाश्वमेध से अस्सी तक फैले क्षेत्र का विस्तार मुगल- काल में हुआ है। चोर- डाकुओं के भय से लोग प्रत्येक मुहल्लें में फाटक बनवाते रहे। परिवार में बंटवारे होते रहे। इन्हीं कारणों से घरों में बेतरतीब सीढ़ियों के निर्माण होने

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

लगे, जिससे कम जगह में काम चलाया जाए और परिवार को गंगा किनारे तथा बाजार से दूर न रहना पड़े।

कहा जाता है कि काशी में राजा मानसिंह ने सवा लाख मंदिरों का निर्माण कराया था। आज से नहीं, प्राचीन काल से ही ठेकेदार लापरवाही बरतते आये हैं। इन मंदिरों के निर्माण में उन लोगों ने अपने शिल्प का परिचय दिया होगा, पर सीढ़ियों के निर्माण में लापरवाही दिखाई।

काशी में मंदिर या घाट बनवाना, धार्मिक कार्य समझा जाता था। राजा बलवंत सिंह के अनुरोध पर भारत के विभिन्न प्रांतों के राजाओं ने यहाँ मंदिर, महल और घाट बनवाये। कारीगरों को जैसी सुविधा मिली, उसी प्रकार की सीढियाँ बनती गयीं। अस्सी से राजघाट तक फैले घाटों में समानता नहीं है। वे कहीं बहुत संकरी, तो कहीं चौड़ी हैं। सुडौल घाटों का निर्माण १९ वीं शताब्दी के अंत में हुआ। नदी के गर्भ से ऊँचे स्थान पर नगर बसने के कारण यात्रियों को अधिक चढ़ना-उतरना पड़ता है, फलतः सीढ़ियों को भी बदनामी का सेहरा स्वीकार करना पड़ा।

आर्यों का दल जब सरस्वती नदी से आगे बढ़ा, तब गण्डक नदी के किनारे आकर रुक गया। आगे भयंकर जंगल होने के कारण उन लोगों में साहस नहीं हुआ कि बिहार या बंगाल तक ले जाए। संभवतः उन्हीं दिनों आर्यों की कोई टुकड़ी काशी में ठहर गयी थी। जो लोग पठन- पाठन के प्रेमी होते हैं, उन्हें शांत परिवेश अधिक पसंद आता है। कहा जाता है कि उन दिनों काशी का वातावरण बहुत शांत था। वरणावती नदी के किनारे चंदन के अगणित वृक्ष थे। फल- फूल और शस्य से यह स्थान परिपूर्ण था। इन सबसे अधिक महत्व की बात यह थी कि यहाँ गंगा उत्तखाहिनी थी। यहाँ के आदिवासी शिव के उपासक थे।

जहाँ विद्वानों की मण्डली रहती है, वहीं अन्य विद्वान आते हैं। उत्तर भारत में काशी नगर बाहरी हमलों से सुरक्षित था। यही वजह है कि इस नगरी के संबंध में वेद, उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रंथों में चर्चा हुई है। फलतः सभी संप्रदाय के विद्वान अपने ज्ञान- विवेक की जानकारी की आलोचना करने यहाँ आते रहे। बुद्ध, शंकराचार्य, रामानंद, चैतन्य महाप्रभु से लेकर दयानंद सरस्वती तक यहाँ आये और अपने मत के प्रचार के लिए मठ और शिष्य बनाने लगे। इस प्रकार अनेक संप्रदायों के संन्यासियों का निवास स्थल यहाँ बन गया।

संन्यासियों की अधिकता का कारण यह भी था कि सभी अपने मत के प्रचार में लगे थे। शास्त्रार्थ की परंपरा चालू हुई। विद्वान के समीप विद्वान जाते हैं। अतः इन संन्यासियों के कारण ही काशी की धार्मिक महत्ता बढ़ी। अधिकांश विद्वान काशी आकर बस गये। प्राचीन काल से ही काशी विद्या की केंद्र- भूमि रही। जिस प्रकार यहाँ के छात्र तक्षशिला और नवदीप पढ़ने जाते थे, उसी प्रकार दर्शन और अध्यात्म पढ़ने के लिए तक्षशिला के छात्र यहाँ आते रहे। इन छात्रों को अधिकांश संन्यासी ही पढ़ाते थे। संन्यासियों के कारण काशी की महत्ता बढ़ी। यहाँ तक कि देश की आजादी के लिए मधुसूदन सरस्वती 'संन्यासियों को अस्त्र रखने की आज्ञा दी जाय', का आवेदन लेकर अकबर के पास गये थे। उनका उद्देश्य था -- संन्यासियों पर होने वाले अत्याचार को शस्त्र- बल से रोका जाए।

संन्यासियों के संबंध में जो अप्रतिष्ठा की परंपरा चालू हुई, वह बीसवीं शताब्दी की देन हैं, जिनमें विद्वता की अपेक्षा धूर्तता का प्रवेश हो गया। संत त्याग के स्थान पर राजसी सुख का आनंद लेने लगे। फलतः जनता ने उनके विरुद्ध अपवाह फैलाना प्रारंभ किया --

रांड़- सांड़ सीढ़ी संन्यासी।
इनसे बचे सो सेवे काशी।।

© Copyright IGNCA, Sunil Jha
All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.